आत्मकथा

आत्मकथा हिंदी की एक विकासोन्मुखी विधा है। कुछ विद्वान इसे जीवनी विधा का ही भेद मानते है। जब कि जीवनी और आत्मकथा में पर्याप्त भेद है। स्थूल रूप में लेखक जब अपने जीवन के संदर्भ में लिखने लगता है, तब वह आत्मकथा बन जाती है और अपने को अलग किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन के संदर्भ में लिखने लगता है तो उसे जीवनी कहा जाता है। सूत्र रूप में कहना हो तो आपबीती आत्मकथा है और जगबीती जीवनी है। स्थूल रूप में दिखाई देनेवाला यह भेद ही दोनों की रचना प्रक्रिया और उद्देश्य के धरातल पर दोनो की पृथकता को गहराई से स्पष्ट करता है। स्वानुभूत सत्य और अध्ययन से अर्जित सत्य के उदघाटन में अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर जो भेद है वही आत्मकथा और जीवनी में है। अन्य विधाओं के अनुपात में आत्मकथा का उद्भव और विकास काफी विलम्ब से ही हुआ है। इसलिए उसके स्वरूप का विश्लेषण भी विलम्ब से ही हुआ है। बहुत दिनों तक जीवनी के एक भेद के रूप में ही उसके स्वरूप का विश्लेषण किया जाता रहा है।

परिभाषाएँ : –

श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी :--

ये आत्मकथा के स्वरूप के बारे में लिखते है– "आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति मनुष्य की मूल और स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपने प्रत्येक क्रियाकलाप में कला और साहित्य में मनुष्य एक प्रकार से अपने को ही तो अभिव्यक्त करता है। मनुष्य की यही स्वाभाविक प्रवृत्ति आत्मकथा की भी प्रेरणा है। ये अपने संबंध में स्वयं द्वारा लिखी जाती है। प्रामाणिकता और विश्वसनीयता की दृष्टि से आत्मकथा सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि अपने संबंध में स्वयं उस व्यक्ति से अधिक दूसरा कोई नहीं जान सकता "

डॉ. जगदीश मिश्र :-- "आत्मकथा में लेखक स्वयं अपने जीवन और कार्यो को इस प्रकार प्रस्तुत करता है, जिससे उसके व्यक्तित्व एवं उसके युग की स्पष्ट झलक मिल जाए।"

राय पास्कल :-- राय पास्कल के अनुसार "एक विशिष्ट परिवेश के मध्य दिए गये विशिष्ट क्षणों का पुन:सृजन आत्मकता है।"

डॉ. चंद्रभानू सोनवणे :-- इनकी परिभाषा इन सब में विशिष्ट है। उनके मतानुसार-- "आत्मकथा वह गद्य विधा है, जिसमें लेखक निजी जीवन एवं व्यक्तित्व का सर्वांगीण अध्ययन तटस्थ एवं संतुलित दृष्टि से करता है।

आत्मकथा के तत्त्व

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर आत्मकथा के पांच स्वरूप विधायक तत्त्व माने जा सकते है–

1] वर्ण्यविषय या वस्तु
2] चरित्र चित्रण
3] परिवेश
4] भाषाशैली
5] उद्देश्य

1] वर्ण्य विषय या वस्तु :-- स्थूल रूप में आत्मकथा स्वयं लेखक का जीवन-वृत्त ही होता है। लेखक अपने जीवन के विभिन्न घटना प्रसंगों का स्मृति के द्वारा अंकन करता है। लेकिन यह अंकन मात्र आत्मकथा नहीं है। घटना, प्रसंगों का स्मरण, पृथःकरण, चयन और प्रस्तुतीकरण की एक जटिल प्रक्रिया उसमें विद्यमान होती है। इस संदर्भ में राय पास्कल ने लिखा है "आत्मकथा में जीवन की उलझी हुई प्रक्रिया के बीच तथ्यों का चुनाव महत्वपूर्ण घटनाओं का विभाजन, विश्लेषण, अभिव्यक्ति का चुनाव इन सबका आधार लेखकीय वर्तमान दृष्टिकोण से निश्चित होता है।" इस कथन में महत्वपूर्ण घटनाओं से

तात्पर्य महानता सूचक घटनाओं से नहीं अपितु कथ्य-सूचक दृष्टि से महत्वपूर्ण घटनाओ से है। तथ्य तथा घटना प्रसंगो का चयन लेखक के जिस दृष्टिकोण पर निर्भर होता है उसका निर्माण जविनानुभावों के परिणाम स्वरुप प्राप्त परिपक्वता से होता है। इसलिए प्राय: आत्मकथा लिखने की एक विशेष उम्र मानी जाएगी क्योंकि परिपक्वता से जनित सार्थक दृष्टिकोण का संबंध मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उम्र से रहा करता है। युवा व्यक्ति की आत्मकथा में तटस्थता का अभाव इसी सार्थक दृष्टि के अभाव का परिणाम होता है। यहाँ यह भी हमे ध्यान रखना है कि कथानक (अतीत बोध) का बृहद या संक्षिप्त या वैविध्यपूर्ण स्वरूप को प्राप्त करना ही आत्मकथा की स्तरात्मकता के लिए आवश्यक नहीं। जैसे कि डॉ. नारायण शर्मा ने अपने शोध प्रबंध 'हिंदी आत्मकथा' में लिखा है – "वस्तुतः आत्मकथा में कथावस्तु के विस्तीर्ण वैविध्यपूर्ण की तुलना में अधिक महत्व है वर्तमान बोध का | लेकिन लेखक की दृष्टि में वर्तमान बोध तो साध्य बन जाता है और अतीत बोध साधन"

2] चरित्र चित्रण **:--** आत्मकथा मे स्वयं लेखक नायक के रूप में उभरता है क्योंकि यही एक ऐसी विधा है जहाँ लेखक अतीत के जीवन का पुनरावलोकन कर स्वयं के व्यक्तित्व को सही रूप में जानना चाहता है तथा औरों को पारीचित कराना चाहता है। अपने व्यक्तित्व को यथार्थ रूप में पहचानना और उसका अंकन करना सबसे कठिन कार्य है। अब्राहम काइली ने लिखा है– " किसी आदमी का अपने संबंध में स्वयं लिखना कठिन भी है और दिलचस्प भी। क्योंकि अपनी निंदा लिखना हमें बुरा मालूम होता है। और अगर हम अपनी तारीफ करे तो पाठकों को उसे सुनना सहन नहीं होता।" लेखक यहाँ आत्म-प्रदर्शन तथा आत्मसमर्थन के प्रलोभन में आकर अपने व्यक्तित्व के उज्ज्वल पक्षों का अंकन तथा अपने ही व्यक्तित्व का समर्थन करे तो वह आत्मकथा नहीं आत्म-रति है। एक दूसरा खतरा भी यहाँ है, जिसकी ओर प्रो. जावेट ने संकेत किया है-- "आत्मकथा के संबंध में वास्तव में खतरा किसी से जाना जा सकता है, तो आत्मस्तुति से नहीं बल्कि विनयशीलता से है। "वस्तुतः इस स्तर की विनयशीलता भी आत्म प्रदर्शन का हीन रूप होता है। इसलिए व्यक्तित्व के चित्रण में में तटस्थता के साथ-साथ आत्मालोचक दृष्टिकोण का होना अनिवार्य होता है। इस संदर्भ में मराठी के मूर्धन्य आलोचक वा.ल. कुलकर्णी ने लिखा है– "आत्मकथा-सृजक की स्थिति में लेखक दो व्यक्तित्वों में विभाजित हो जाता है। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व और दूसरा कलाकार का व्यक्तित्व। कलाकार का व्यक्तित्व तटस्थ दृष्टिकोण को अपनाकर व्यक्ति के व्यक्तित्व का जिवनानुभवों का परीक्षण करने लगता है। यहाँ पर उसका आत्मविश्लेषण या आत्मपरीक्षण उस चित्रकार की तन्मयता को प्राप्त कर लेता है, जिसकी तल्लीनता में एक विशिष्ट प्रकार की अलिप्तता भी रहा करती है। उसे अपने ही संबंध में कुतूहल होने लगता है कि मैं कौन हूँ, मैं कैसे विकासित हुआ और आज जिस स्थिति में हूँ, वह मुझे किस तरह प्राप्त हुई आदि प्रश्नों का वह अपने आप विचार करने लग जाता है। अत: 'स्व' का पृथक और किसी तटस्थ वृत्ति से देख पाना संभव हो जाए तो ही कलाकार को यथार्थ दर्शन हो सकता है।

आत्मकथा का केंद्रीय विषय स्वयं लेखक हुआ करता है। परंतु कोई भी व्यक्ति उसके संपर्क में आनेवाले के प्रभाव से मुक्त नहीं होता। इसलिए अपने संपर्क में आए चरित्रों का संतुलित चित्रण करता है। जिस तरह लेखक के व्यक्तित्व के उज्ज्वल पहलू से जुड़े चरित्रों का अंकन होता है, उसी प्रकार उसके दोष-पूर्ण पहलू से जुडे चरित्रों का भी | लेखक में तटस्थता न हो तो यहाँ भी एक खतरा है कि लेखक आपने दोषों लिए जिम्मेदार पात्रों का निर्माण करेगा या उसके दोषों की जिम्मेदारी औरों पर लाद कर स्वयं को बेदाग साबित करने की कोशिश करेगा।

3] परिवेश **:--** किसी भी व्यक्ति के जीवन तथा व्यक्तित्व का अध्ययन उसके अंतर्बाहय परिवेश के अध्ययन के बिना अधूरा माना जाएगा। इसलिए आत्मकथा लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन के घात-प्रतिघात की मानसिकता के साथ अपने युग के बाहय परिवेश का भी अंकन आत्मकथा में करता है

वस्तुतः लेखक आत्मचेतना के साथ युग-चेतना की भी अभिव्यक्ति करता है। समसामायिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों का प्रसंगानुसार चित्रण आत्मकथा में अनिवार्य रूप में होता है।

4] भाषा शैली या भाषा शिल्प :-- जहाँ तक भाषा का प्रश्न है आत्मकथा में विषयानुरूप सहज- प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग होता है। उसके शैल्पिक कलात्मकता के संदर्भ में कई बार प्रश्नचिह्न लगाये जाते हैं।यहाँ तक की कुछ विद्वान आत्मकथा को साहित्य और साहित्येतर की सरहद की विधा मानते हैं। लेकिन जैसे कि डॉ. नारायण शर्मा ने लिखा है --"स्तरीय आत्मकथाकार वस्तुतः कलाकार की भूमिका निभाता है। वह विगत जीवन के सभी अनुभव खंडो के विशाल भण्डार को बेतरतीब तथा नीरस रुप में प्रस्तुत नहीं करता। वह वर्तमान बोध के मापदंड के आधार पर विगत जीवन के अनुभव खण्डो का चुनाव करता है। तथा तटस्थ दृष्टिकोण से इन्ही चुनिन्दा अनुभव खण्डो का विश्लेषण करने लग जाता है। वर्तमान बोध तथा कलाकार की तटस्थता के फलस्वरूप विगत जीवन का यथार्थ जहाँ एक ओर जीवन को यथार्थ से परिचय कराता है वही उसमें रमणीयता का तत्व भी उत्पन्न हो जाता है। सत्य तथा रमणीयता का इस स्तर का संलिष्ट हो जाना ही आत्मकथा का कलात्मक स्तर प्राप्त करना है।"

आत्मकथा उत्तम पुरुष शैली में लिखी जाती है। आवश्यकतानुरूप गद्य कि अन्य शैलियों का प्रयोग भी उसमें हो सकता है।

5] उद्देश्य :-- स्मृतियों को जागृत कर आनंद देना, बोध देना आदि आत्मकथा के उद्देश्य कहे जाते रहे हैं लेकिन आत्मकथा वास्तव में लिखी इसलिए जाती है कि लेखक अपने- आपको जानना चाहता है, अपने उस मुकाम को पहचानना चाहता, है जहाँ वह पहुँच चुका है। अतः आत्मबोध आत्मकथा का मूल उद्देश्य कहा जा सकता है।